INDIAN STREAMS RESEARCH JOURNAL
ISSN NO : 2230-7850
IMPACT FACTOR : 5.1651 (UIF)
VOLUME - 14 | ISSUE - 3 | APRIL – 2024

"डॉ. शशिप्रभा शास्त्री के कथा लेखन में नारी के धार्मिक जीवन का अध्ययन"

उमा साकेत[1] , डॉ. ऊषा नीलम[2]
[1]शोधार्थी, हिन्दी विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
[2]प्राचार्य, शासकीय इंदिरा गांधी गृह विज्ञान , कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शहडोल (म.प्र.)

सारांश –

भारत वर्ष ने प्राचीन काल में समुचे संसार में धर्म के कारण एक प्रमुख स्थान प्राप्त किया था। धर्म के कारण ही समाज जीवन में शांति और सुरक्षा थी। अनेक ऐतिहासिक कारणों से भारतीय जीवन से धर्म का पतन होना शुरू हुआ है। अपनी अज्ञानता, अंधविश्वास, स्वार्थ परतंत्रता आदि के कारण भारतीय समाज वास्तविक धर्म से धीरे–धीरे दूर होता चला गया। आज विदेशी संस्कृति का प्रभाव भारत वर्ष पर पूरी तरह छाया हुआ है। जिसके कारण भौतिकवादिता की स्पर्धा में भारतवासी अंधे होकर दौड़ रहे हैं। सच तो यह है कि धर्म से दूर होना हानिप्रद होता है। आज की भौतिक धर्मांधता का शिकार होकर युवा वर्ग मानसिक रूप से संघर्ष कर रहा है। वह भोगवाद, यांत्रिक जीवन से इतना त्रस्त हो गया है कि मादक पदार्थों का सेवन का शांति की खोज में भटक रहा है। भौतिक प्रगति के कारण असंतोष, अनुशासनहीनता और पारस्परिक संघर्ष स्पष्ट दिखाई देने लगा है। मनुष्य जीवन धर्म से अलग होकर दिशाहीन बनता जा रहा है।

मुख्य शब्द – भारतीय जीवन, धर्म, अज्ञानता, अंधविश्वास एवं परतंत्रता।

प्रस्तावना –

मानव जीवन में धर्म को एक महान शक्ति बताया है। यह बात निर्विवाद है कि, धर्म मस्तिष्क को शांति देता है, मनुष्य के हृदय में आशा का संचार करता है। उसे हर मुसीबत का सामना करने के लिए बल देता है। धर्म के दो रूप बताए गये हैं – एक वैयक्तिक और दूसरा सामाजिक। ये दोनों ही अन्योन्याश्रित होते हैं। व्यक्ति की धर्मभावना को एक पथ–दर्शन चाहिए एवं उन्हें यह सिखाने की आवश्यकता है कि उसका उद्देश्य क्या है तथा किस प्रकार उसे इंद्रियों का जीवन त्यागकर आध्यात्मिक जीवन पसंद करना चाहिए। समाज के हित का भी समान रूप से ध्यान रखना चाहिए। सब प्राणियों को एक सामंजस्य–सूत्र में बाँध रखने वाली शक्ति धर्म कहलाती है।

सामाजिक कल्याण का विधान करने वाला आचरण ही पुण्य है। धर्म और नीति में घनिष्ट संबंध है। जब तक व्यक्ति किसी विचार, व्यवहार या ज्ञान को धारण नहीं करता तब तक धार्मिक भावना को साथ लेकर चलना संभव नहीं है। धर्म सिद्धांत तथा व्यवहारों को मानव निर्धारित करता है तथा नैतिकता के माध्यम से धर्म की बातों को व्यवहार में प्रयुक्त करता है। धर्म एक सैद्धांतिक पक्ष है और नैतिकता व्यवहारिक पक्ष है। धर्म एक कारण है तो नैतिकता उसका परिणाम है।

डॉ. शशिप्रभा शास्त्री धर्म, दर्शन, राजनीति तथा अर्थ के संबंध में अपने विचार व्यक्त किए हैं। धर्म दर्शन ने उन्हें एक सामान्य व्यक्ति की तरह प्रभावित किया है। वह स्वयं कहती है – ''मैं आर्य समाजी विचारधारा की उदारमतवादी अध्ययनशील महिला हूँ, इसीलिए आस–पास के परिवेश तथा राजनीति के प्रति जागरुक हूँ।

राजनीति में भाग लेना या उसका कोई सक्रिय सदस्य बनना मुझे प्रिय नहीं है, पर जानकारी रखना तो हर प्रबुद्ध नागरिक का कर्तव्य है ही, इसी तरह मैं राजनीति से जुड़ी हूँ। दर्शन यानी मेरी पृथक विचारधारा है, जिसका निर्माण विविध विषयों (राजनीति, धर्म, मनोविज्ञान तथा साहित्य) की पुस्तकें पढ़ने से हुआ है। अर्थ बस मेरे लिए उसी सीमा तक आवश्यक है, जहाँ तक वह मेरी आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होता है। फिजूल खर्ची या फैशनपरस्ती पर खर्च करना मुझे उचित प्रतीत नहीं होता।''[1] वास्तव में वह आर्य समाजी होने के कारण उनकी विचारधाराएँ उदारवादी रही है।

धर्म एक सर्वव्यापक शक्ति है, जो व्यक्ति और समाज को अनेक प्रकार से प्रभावित करती है। धर्म अनेक संघर्षों का अंत करता है। वह व्यक्ति में उन शक्तियों का संचार करता है, जो कठिनाइयों, पराजयों को स्वीकार नहीं करता है। इस प्रकार से मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन में धर्म अपना स्थान रखता है। आज नारी अत्याचार, शोषण को ठुकरा कर स्वावलंबी बनने के लिए तैयार है। वह अपने व्यक्तिगत धर्म के अनुसार जीने के लिए आगे बढ़ रही है।

विश्लेषण –

डॉ. शशिप्रभा शास्त्री की अपनी स्वतंत्र विचारधारा है। उन्होंने मनुष्य में ईमानदारी और निस्वार्थ भाव को महत्व दिया है। वह ईश्वर को मानती हैं, किन्तु पाखंड, बाह्याडंबर, कर्मकांड आदि का विरोध करती है। उदारमतवादी विचारों की महिला होने के कारण उनके ईश्वर संबंधी विचार ही उदार हैं। लेखिका नास्तिक नहीं है। किन्तु वह कर्मकांड में विश्वास नहीं करती। पाखण्ड, कर्मकाण्ड, विलासिता तथा भ्रष्टाचार से घृणा है। विचार और क्रिया में वह समानता मानती है। व्यक्ति की क्रियाएँ अर्थात् व्यवहार ही उसके विचारों का द्योतक है। कभी–कभी शराबी कबाबी व्यक्ति भी ऊँचे आचार का हो सकता है, यानी ईमानदार, सहायक, वचनबद्ध और मेहनती को ही लेखिका चरित्र समझती है। वह सदैव दिखावे करने वाले, अपना ढिढोरा पिटने वाला तथा स्वार्थ के लिए रंग बदलने वालों से नफरत करती है। स्वार्थ प्रेरित अथवा मतलब से जोड़े गये संबंध अवसर पाकर नष्ट, भ्रष्ट हो जाते हैं। अतः स्वार्थी व्यक्तियों से लेखिका घृणा करती है। ईमानदारी निस्वार्थ भाव से की गई क्रियाएँ उन्हें हमेशा अच्छी लगती है। क्योंकि यह गुण व्यक्ति को मानव बनाता है। वचन देकर भूल जाना और किसी व्यक्ति के उपकार को न मानना लेखिका की दृष्टि से सबसे बड़ा पाप है।

'क्योंकि' उपन्यास की श्यामा अपने माता–पिता द्वारा दिए गए भरसक दहेज के बल पर विवाह कर लेती है लेकिन वह कभी भी सुख नहीं पाती। यहाँ लेखिका ने सखी आशा के मुख से अपना आक्रोश व्यक्त करवाया है – ''मैं पर्सनली इन सभी रीति–रिवाजों के एकदम खिलाफ हूँ। मेरी राय में तो श्यामा के लिए लड़के की पसंदगी–नापसंदगी का सवाल ही सबसे अहम था, वह कुछ तो हुआ नहीं, लड़की की शादी ढोर–डंगर की तरह करवा दी गयी। लेन–देन के आधार पर।''[2] डॉ. शशिप्रभा शास्त्री ने स्वयं अंतर्जातीय विवाह किया है। विवाह में वे जात, पाँत, धर्म को महत्व नहीं दिए। वह आर्य समाजी होने के नाते इन सब बातों का विरोध करती है। उसने नागरीय जीवन की भागम भाग में उलझे हुए दाम्पत्य संबंधों को यथार्थ अभिव्यक्ति प्रदान की है। उनका दृष्टिकोण बहुआयामी है। लेखिका की वैचारिक मान्यताएँ किसी वाद से जुड़ी नहीं है। उनकी स्वतंत्र विचारधाराएँ स्त्री सापेक्ष है। स्त्री का आत्मनिर्भर होना उन्हें प्रिय लगता है। उनके इन महान सिद्धांतों के कारण ही उनका साहित्य सुंदर बना हुआ है। उनका साहित्य वैयक्तिक न होकर नारीवादी नींव पर निर्मित राष्ट्रीय संपत्ति है।

डॉ. शशिप्रभा शास्त्री धर्म को मानव की उत्पत्ति स्वीकार करती है। एक लेखिका होने के नाते स्वानुभव और विविध व्यक्तियों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करते हुए वह मानती है कि धर्म ईश्वर की देन नहीं है बल्कि मानव द्वारा निर्मित है। इसे स्पष्ट करते हुए डॉ. शशिप्रभा शास्त्री कहती हैं कि मानव एक विवेकशील विचार शक्ति के सहारे मनुष्य किसी एक निर्णय पर पहुँचता है। वह अपनी अंतरात्मा की आवाज सुनता है। क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए मनुष्य निश्चित करता है। इसी को वह अपने मस्तिष्क में धारण करता है और दैनंदिन व्यवहार में काम लाता है। धर्म के लिए कोई विशेष भगवत प्रदत्त शक्ति या भगवान की देन जैसा तथ्य नहीं है। व्यक्ति वयस्क हो जाने के बाद अच्छे बुरे का विचार करने लगता है। उसके मन में सुप्रवृत्तियों का विकास अपने आप होता रहता है। अपने धार्मिक विचारों में सामाजिक परिवेश और परिस्थिति भी योगदान देती है।

डॉ. शशिप्रभा शास्त्री ने धर्म का आधार एवं आस्था को अपने कथा साहित्य में निम्न प्रकार से स्पष्ट किया है। वह कहती है कि प्राचीन काल में धर्म मानव–जीवन का आधार था। धर्म, अर्थ, मोक्ष मानव–जीवन के लक्ष्य थे। इन लक्ष्यों की पूर्ति शिक्षा द्वारा की जाती थी। धर्म से सदाचार, व्यवहारकुशलता, नैतिकता, सामाजिक कुशलता परोपकार करने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। लेखिका का परमोद्देश्य व्यक्ति के चरित्र का नैतिक विकास करना था। ताकि उसका व्यक्तित्व समजोपयोगी और व्यवहारिक बन सके। इसी से मानव के जीवन मूल्यों का विकास होता है। धर्म एक सूक्ष्म विचार है, जिस पर व्यक्ति की प्रबल आस्था होती है। इसी कारण व्यक्ति अपने धर्म को ऊँचा मानता है। किसी भी परिस्थिति में उसकी अवमानना नहीं कर पाता। पूजा–पाठ, कर्मकांड, यज्ञ, जपतप, उत्सव, व्रत, उपनयन, विवाह, संस्कार यह सब केवल मनुष्य की आस्था का परिणाम है। आज संसार में सांप्रदायिकता जैसी स्थिति उत्पन्न हो गई है। इसका कारण धर्मांधाता है। डॉ. शशिप्रभा शास्त्री ने अपने उपन्यासों में कई जगह पर प्रस्तुत चरित्रों को धार्मिक संकट में लाकर खड़ा कर दिया है। कहीं–कहीं पुरानी धार्मिक मान्यताओं को नवीन विचारधाराओं की ओर प्रेरित किया है।

डॉ. शशिप्रभा शास्त्री का संपूर्ण साहित्य नारी–जगत की विभिन्न समस्याओं को लेकर लिखा गया है। पात्रों को परखने के लिए जिस प्रकार की दृष्टि चाहिए वह डॉ. शशिप्रभा शास्त्री में है। साठोत्तर कथा–साहित्य पर दृष्टिपात डालने पर ऐसा लगता है कि हिन्दी साहित्य में दर्जनों लेखिकाएँ उभर आयी, जिनका विशेष बोलवाला हुआ। उनके साहित्य में स्त्री–पुरुष की समानता को लेकर काफी बोल्ड सामग्री प्रस्तुत की गयी। परंतु डॉ. शशिप्रभा शास्त्री ने स्त्री–पुरुष के संबंधों को लेकर काफी प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत की है। 'वीरान रास्ते और झरना' उपन्यास में विदेश से ऊँची डिग्री लेकर लौटा हुआ शैलेन्द्र अचला के कुकर्म जानकर भी उसे मिलने आता है। जिसने तीन साल तक कोई पत्र तक नहीं लिखा, पता नहीं अचला के किसा वाक्य ने उसे समझौता करने बाध्य किया। उसका निम्न कथन ''मैंने तुम्हें अपनी पत्नी बनाने की बात चाहे नहीं सोची हो, पर फिर भी मैं तुम्हें अग्नि की तरह पवित्र और धूप की तरह देखना चाहता था।''[3] विदेशी वातावरण में रहें व्यक्ति का नितांत स्वार्थपूर्ण वाक्य लगता है। अंत में उससे शादी कर सचमुच उसे समाज की निगाहों में ऊँचा उठा देता है।

'परछाइयों के पीछे' उपन्यास में एक ऐसी कामकाजी नारी की कहानी है जो न चाहते हुए भी अपने क्रूर पति के सारे अत्याचारों को सहन कर अपने बच्चों के लिए जीना चाहती है। उसकी साँवली आकर्षक मुद्रा एवं सुरीली आवाज पर मर मिटने वालों की कमी नहीं है फिर भी लेखिका ने उसे आदर्श की राह से हटने नहीं दिया। सुमित्र को अपने बच्चों की बरबादी का ख्याल जब आता है तब सोचने लगी कि वह भी उतनी ही जिम्मेदार है जितना महिमाल। कामकाजी नारी को विपरीत परिस्थितियों में भी अपने कार्यों को कुशलतापूर्वक संपन्न करना पड़ता है। इस पर लेखिका कहती है– ''कामकाजी महिलाओं के लिए, हर समय मुस्कान का मुखौटा चढ़ाए रखना कितना जरूरी होता है।''[4] आज वे समझौते बच्चों के भविष्य के लिए करने को तैयार थी। इससे ऐसा लगता है कि लेखिका भारतीय परंपरा के अनुसार सुमित्रा और महिपाल में समझौता लाकर नारी–पुरुष समानता को दर्शाने का प्रयास करती है। लेखिका पुरुष की पुरानी घिसी–पिटी मानसिकता को बदलकर स्त्री–पुरुष में समानता लाकर कामकाजी नारी सुखी बनाना चाहती है।

'क्योंकि' उपन्यास में नायिका आभा की सहयोगी मिस शकुंतला तायल शक्ल–सूरत से सुंदर होने पर भी दहेज न जुटा पाने के कारण उसकी शादी हो नहीं पायी। अतः वह निश्चय करती है कि ''में शादी तभी करूँगी, जब कोई मेरी खासियत को पहचानने वाला खुद आगे बढ़कर सामने आएगा।''[5] डॉ. शशिप्रभा शास्त्री यहाँ स्पष्ट करना चाहती है कि आज की लड़कियाँ प्रोटेस्ट कर दें, कि वे ऐसे लड़के से शादी नहीं करेंगी, जो अपना सौदा करने देता है, तो आज सब समस्याएँ हल हो जाती। इस प्रकार से डॉ. शशिप्रभा शास्त्री ने नारी का मनोवैज्ञानिक चित्रण करते हुए नारी की विविध समस्याओं की ओर ध्यान केंद्रित किया है। इन समस्याओं को आधार मानते हुए जहाँ एक ओर प्रताड़ित, शोषित अवहेलित नारी की दुर्दशाओं का चित्रण किया है। वहीं दूसरी ओर नारी चरित्रों के माध्यम से पुरानी मान्यताओं को टुकरा कर क्रांति की ओर प्रेरित किया है। लेखिका आशावादी है। अतः नारी–पुरुष में समानता लाने में प्रयासरत नजर आती है।

जब लोगों ने धर्म के वैज्ञानिक आधार को समझना छोड़ दिया तो अज्ञानतावश लोगों में धार्मिक अंधविश्वास, भ्रम, भय आदि दुर्गुण उत्पन्न हो गए। इन दुर्गुणों से प्रभावित होकर लोगों ने धर्म का अनर्थ करना प्रारंभ कर दिया। धर्म के नाम पर अत्याचार, पाप करना शुरू कर दिया। फलतः लोग परेशान होकर नास्तिक (ईश्वर को न मानने वाले) बनने लगे। ऐसी परिस्थितियों में पाप–पुण्य संबंधी भावना दूर हो गयी। लोग स्वार्थी

बनने लगे। तब समाज में अनेक धार्मिक एवं समाज सुधार महान पुरुषों ने जन्म लिया और भटकी हुई मानवता को सच्चा पुण्य का मार्ग दिखलाया। डॉ. शशिप्रभा शास्त्री ने पाप–पुण्य संबंधी विचारों को स्पष्ट करते हुए कई चरित्रों को विषम परिस्थितियों में दिखाया है। सामान्यतः समाज जिसे स्वीकारता है उसे मनुष्य पुण्य समझता है और समाज जिसे नकारता है उसे पाप समझता है।

'उम्र एक गलियारे की' उपन्यास में पाप–पुण्य क्या है, इसका संबंध नैतिकता–अनैतिकता से जोड़कर डॉ. शशिप्रभा शास्त्री ने स्पष्ट किया है कि आनंद बिना प्रयास से नहीं मिलता। यदि परिस्थिति में पड़कर संयोग के कारण अथवा नियति के प्रभाव से आनंद मिले तो, क्या उसका उपभोग करना पाप है? नैतिकता के झुटे बंधन ओढ़कर आदमी को आनंद का उपभोग करने से कतराना क्या उचित है? पति को छोड़कर अन्य किसी पुरुष से संबंध जोड़ना पाप है, यह हमारी सामाजिक मान्यता है, यह कहकर किया गया कार्य अपने प्रति किया गया अत्याचार है। यह अत्याचार दूसरों के प्रति किये गये अत्याचारों से भी अधिक भयावह है। इसका अंकन डॉ. शशिप्रभा शास्त्री ने बड़े सुंदर ढंग से किया है। दमित काम वासना का जब विस्फोट होता है तब व्यक्ति किस प्रकार की हरकतें करता है वह दृष्टव्य है। उसने ''पूरी साड़ी पैरों के पास से सिकुड़ी हुई, टखनों पर सिर्फ पेटीकोट की लैस फैल रही। ब्लाउज के बटन उसने तड़ातड़ खोल डाले, नंगी छातियाँ दो गुलमुले शहरी कबूतरों की तरह एक–दूसरे पर गद्पद् पड़ी हुई। उन पर बेखबर टिकी हुई उसकी बायें हाथ की मुट्ठी–दुनिया भर के प्रति ईमानदारी बरतकर खुद के प्रति बेईमानी बरतती रहने वाली एक लाचार नारी''[6] इस बात को लेखिका ने सुनंदा के माध्यम से स्पष्ट किया है। सुनंदा अपना पति नवल से खुश नहीं है। वह अपने आप पर अत्याचार करती रहती है। अंत में उसकी मानसिक प्रतिक्रिया समाज के विरोध में जाती हुई नजर आती है। आनंद पाने के लिए वह पाप–पुण्य की खोखली मान्यताओं को त्यागकर अपने मित्र के साथ संबंध स्थापित करती है।

'परछाइयों के पीछे' उपन्यास में नायिका सुमित्रा पति द्वारा मामूली शक पर लांछित, निष्कासित है। फिर भी लेखिका ने सुमित्रा को महिमाल के साथ बार–बार समझौता करने पर मजबूर किया है। उसकी ओर आकर्षित होने वाले पुरुषों के साथ उसको नई राह पर नहीं चलने दिया। लेकिन महिपाल उस पर अनेक प्रकार के क्रूर अत्याचार करता रहता है। हर पैदा हुए बच्चे को पहले नकारते हुए कहता है कि 'यह मेरा नहीं है'। तब सुमित्रा के ह्रदय की चीत्कार को लेखिका ने यों प्रकट किया है। ''तेरा नहीं है तो और किसका है मुत्ते, हर बच्चे की बारी में इसने यही रंग दिखाए हैं तिस पर तुरी कि पहले नकारकर दुरदुराया और फिर छल–बल से उसी से उसी नकारे हुए को दबोचकर बैठ गया। हे ईश्वर, ऐसे पापी का क्या कोई इलाज नहीं है? परमात्मा, तू उसके ऊपर कहर बरषा कर, जो तेरे राज्य में इतना जुल्म दाता है।'' पुरुष कितने क्रूर पापी होते हैं, जो अपनी इल्लत जुल्म दाता है।''[7] पुरुष कितने क्रूर पापी होते हैं, जो अपनी इल्लत स्त्रियों पर डालकर निर्द्वन्द्व हो जाते हैं। निष्कासित सुमित्रा अपनी सहेली के पास आग्रा चली जाती है। वहाँ उसका पति आशुतोष सुमित्रा की ओर आकर्षित हो जाता है उसके साथ शारीरिक संबंध जोड़ना चाहता है। सुमित्रा के मन में उसके प्रति सिहरन जगाने लगती है। लेकिन पारंपारिकता सामाजिकता के कारण ऐसी बात को अपनी बेइज्जती समझती है।

'नावें' उपन्यास में सोमजी के साथ मालती का परिस्थिति वश संबंध संपर्क हो गया था तो उसमें अस्वाभाविक घृणा की कोई बात नहीं है। लेकिन उसको छिपाकर स्वयं को पाक–पवित्र बनाना ढोंग है, उस पर पछताना व्यर्थ है। सत्य है वर्तमान, सिर्फ वर्तमान। उस वर्तमान में मालती ने अपने दूसरे पति के साथ जो व्यवहार किया, वह निंदनीय है। मालती ने बेटी के लिए कितना त्याग किया परंतु बदले में क्या पाया। ''एक जोड़ा माँ–बेटी की जिंदगी को सँवारते हुए उन्होंने क्या एक समूचा रेगिस्तान मोल नहीं लिया।''[8] पति–पत्नी का संबंध अनैतिक कैसे हो सकता है? पति–पत्नी के संबंधों को बच्चे देखेंगे–जानेंगे तो क्या सोचेंगे यह विचार व्यर्थ है। जिस माँ ने अपना विवाह समाज की मान्यता लेने हेतु रचाया उसी के विरोध में बेटी ने संस्कार पूर्ण विवाह से मिलने वाले सुख की मान्यता को झूठ साबित कर दिखाया।

डॉ. शशिप्रभा शास्त्री ने कई चरित्रों के माध्यम से पाप–पुण्य संबंधी विचारधाराओं को स्पष्ट करते हुए व्यक्तिगत जीवन में धर्म का स्थान भी अभिव्यक्त किया है। 'सीढ़ियाँ' उपन्यास में डॉ. मनीषी विवाह के तुरंत विधवा बन जाती है। वह एक ही रात की दुल्हन बन पायी थी। ऐसे छोटे से बंधन के कारण कोई स्त्री अपने पति के लिए बैठी जिंदगी भर रोती क्यों रहे? भारतीय समाज इसे पाप समझता है। यहाँ सोचने वाली बात यह है कि जन्म और मृत्यु किसी के हाथ में नहीं होता। यदि पति का स्वर्गवास हो और पत्नी विधवा हो जाए तो

उस महिला की क्या गलती है? इसीलिए उसने अपने जीवन का नया रास्ता खुद चुना और डॉक्टर बन गयी। परिस्थितिवश मनीषी विधवा के रूप में एकांत जीवन बिताती है, पर संयोगवश सुकेत के साथ उसका प्रेम संबंध दिनोंदिन बढ़ता जाता है। सुकेत के व्यवहार से वह क्षीण हो जाती है, और उसे ध्यान से देखने का प्रयास करती है। ''उठता हुआ कद और ऊँचा हो गया था। देह भर आयी थी, स्वर में गंभीर खरखरापन और अधिक समा गया था। हाथ–पैर खूब बड़े–बड़े दिखते थे, छाती पुष्ट, चौड़ी, चेहरा गंभीर विचारशील मुद्राएँ सूट पहनकर तो वह अपनी ऊपर से बहुत बड़ा दिखने लगा था।''[9] प्यार मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है। जहाँ तक प्यार का सवाल है, वहाँ जाति, धर्म, वर्ग, उम्र आदि का कोई बंधन नहीं होता। इसी कारण मनीषी सुकेत को अपना जीवन साथी चुनना चाहती है। पर धार्मिक कठोरता के कारण वह कुछ नहीं कर पाती। केवल हाथ मलकर रह जाती है।

'मंजिलों के ऊपर' उपन्यास में लबीना अप्रतिम सुंदर महिला होते हुए भी परिस्थिति वश पत्नी और मातृ धर्म को छोड़कर बहुत दूर एकांत स्थल में चली जाती है। उसका उपभोगवादी पति उसकी सुंदरता को आजीवन बनाए रखने के लिए उसे वात्सल्य ममता के वंचित कर देता है। इसी कारण माता के रूप में लबीना का व्यक्तिगत धर्म क्रांति का रूप धारण करता है। वह भूल जाती है कि वह किसी की पत्नी है। वह तुरंत पति को छोड़कर चली जाती है। वात्सल्य ममता में व्याकुल होकर वह लबीना से सिस्टर लबी बनकर लोगों की सेवा करते हुए अपने पुत्र तक पहुँच जाती है। अंत में उसे पुत्र का मिलन जरूर होता है, लेकिन दिर्घांतराल के बाद धर्मदात्री माता से पाले की माता को स्वीकार करता है। 'पाले की ममता' शब्द ने उसे अपना कर्तव्य याद दिलाया। वह संगल के बच्चे की तीमारदारी करने चली जाती है।

'ये छोटे महायुद्ध' उपन्यास में माता गार्गी अंधविश्वास में डूबकर बदलते परिवेश में भी शतप्रतिशत पुरानी मान्यताओं को लागू करना चाहती है। इसी कारण उसका वाकयुद्ध हमेशा बेटी, बेटा, बहू तथा बाहर वालों से चलता रहता है। दामाद और बेटी की बातचीत भी उसे खटकने लगती है। लड़कियों का सजना–सँवरना भी उनकी आँखों में चुभता था। मृदुला के घर उसकी बेटी ने उनकी मर्जी के खिलाफ बाल कटवाएं तब उन्होंने उसे रंड़ी कहकर गाली दी इन सारी घटनाओं के कारणों पर टिप्पणी करते हुए डॉ. शशिप्रभा शास्त्री लिखती हैं ''वे (गार्गी) दरअसल उन माता–पिता में से थी, जो अपनी संतति के अपने कई प्रेम–प्यार के प्रति प्रायः आश्वस्त नहीं होते उन पर बराबर संदेह करते रहते हैं – बच्चों की शक्ति सामर्थ्य उनकी बुद्धि–प्रतिभा–मनोबल सबके प्रति वे संदेह से भरी रहती, बच्चे भी इसी कारण अपनी सेवाएँ समर्पित करने के प्रति कुण्ठित रहे चलते।''[10] अंत में वह अपनी खोखली मान्यताओं के कारण बेटा, बेटी को छोड़कर एक धार्मिक संस्था में चली जाती है। वहाँ जाकर चुप नहीं रह पाती, 'बाल की खाल' उखाड़ने लगती है।

'अमलतास' में हरदेवलाल पति धर्म न निभाकर कामदा को एक भोग्य वस्तु के रूप में अपने घर में स्थान देता है और बाहर वेश्याओं के साथ आनंद प्राप्त करने में व्यस्त रहता है। अपनी पत्नी कामदा से वेश्याओं की तरह काम क्रीड़ा की इच्छा रखता है। उसकी काया को निर्दयता से मसलते हुए कहता है – ''तुम्हारा रूप उन्नत बेगम की तरह भले हो, पर तुम्हारे रूप में वह कशिश नहीं है, वह नजाकन और नफासत नहीं है, जो कातिल का काम करती है।''[11] इस बात से कामदा के मन में उस पति नामक पुरुष के प्रति नफरत के भाव जगे। पति को बहू स्त्री में देखकर वह अपना पत्नी धर्म निभाने में असमर्थ हो जाती है। यहाँ उसके धर्मसंबंधी विचारों में परिवर्तन दिखाई देता है। वह अपना गर्भ नष्ट कर बच्चे को अमलतास पेड़ के नीचे गाड़ देती है। वह उस संतान की माता बनना नहीं चाहती, जिसका पिता अमीरी के खातिर पैसों के बल पर बहुत सारी लड़कियों की जिंदगी बरबाद कर रहा है।

'नावे' उपन्यास में सोमजी मालती को पत्नी के रूप में स्वीकार करने का वचन देकर शारीरिक संबंध स्थापित करता है। वह गर्भवती बन जाने के बाद सोमजी उसे पत्नी का अधिकार न देकर रखेल के रूप में अन्यत्र रखना चाहता है। इस बात पर दोनों में बहस होती है, तब मालती कहती है – ''मैं स्वतंत्र जीवन बिताना चाहती हूँ, इस तरह बाँधकर आपकी कृपा पर अवलम्बित रहने की चाह अब मेरे मन में नहीं रही।''[12] यहाँ पर भी मालती का नारी मन विद्रोह करने लगता है। ऐसे धोकेबाज के साथ पत्नी धर्म न निभाने की इच्छा व्यक्त करते हुए सोमजी को छोड़कर वह दूर चली जाती है। लेकिन भर्गवत शिशु की हत्या न कर उसी के वात्सल्य में अपनी जिंदगी काट लेती है। वह मातृधर्म को बरकरार रखने हुए, पत्नी धर्म त्याग देती है।

'परछाईयों के पीछे' में सुमित्रा पति के अत्याचारों को सहन करने वाली आधुनिक युग की सीता है। महिपाल सुमित्रा को तरह–तरह का मानसिक तनाव देता है, तब भी सुमित्रा पत्नी धर्म निभाते बच्चों के भविष्य को सामने रखते हुए सब कुछ सहन कर लेती है। यह आवश्य सच है कि महिपाल के न चाहने पर भी वह नौकरी करने लगती है। वह स्वच्छंद रूप से अपनी आर्थिक स्थिति को मजबूत करना चाहती है वह पति धर्म जरूर निभाती है लेकिन पति की इच्छाओं पर उसका कुछ असर नहीं होता। भटनागर से मिलने पर उसकी हीनता ग्रंथी समाप्त हो जाती है। वह रस से सराबोर होकर सोचने लगी कि ''विवाह अथवा प्रेम में एक बार असफल हो जाने पर कथा व्यक्ति का सब कुछ हमेशा–हमेशा के लिये मर जाता है।''[13] वास्तव में वर्तमान परिस्थिति में नारी मन भी ऐसा ही प्रतीत होता है। न तो वह अतीत को भूल पाती है न भविष्य का स्वप्न देखना छोड़ पाती है। सुमित्रा का भटनागर की ओर आकर्षित होना कुछ ऐसा ही था।

डॉ. शशिप्रभा शास्त्री की चर्चित कहानियों का संकलन 'चर्चित कहानियाँ' शीर्षक पर सन् 1996 में प्रकाशित किया गया। 'सामयिक प्रकाशन' ने इसका प्रकाशन किया था। ये हृदय और परिस्थितियों से उगी कहानियाँ हैं। हर कहानी में कहीं नही कहीं लेखिका विद्यमान रहती हैं। उनकी राय में – ''अपने आपको संतुलित बनाये रखने और पुरजोश ढंग से जीता रखने के लिए लिखना ज़रूरी रहा है। स्वयं को संबल देने के लिए लिखी गई ये कहानियाँ किसी दूसरे के लिए भी संबल और पथप्रदर्शक बन सकती हैं, ऐसा मैं मानती हूँ।''[14]

'धर्मरक्षा' कहानी सन् 1999 में 'साहित्य अमृत' मासिका के अगस्त अंक में छपी गयी थी। इस कहानी में नारी जीवन से सम्बंधित कई समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने की कोशिश की गयी है। इसमें नारी मनोविज्ञान को भी पर्याप्त स्थान दिया गया है। एक सुशिक्षित व संस्कारी लड़की की शादी एक अनपढ़ व असभ्य आदमी से की जाती है। वह कुरूप आदमी किसी भी दृष्टि से उस लड़की का लायक नहीं था। पति व ससुराल वालों के दबाब एवं असहयोग के बीच में भी वह मेहनत करके कॉलेज में अध्यापिका बन जाती है। लेकिन ससुराल वालों ने उसे हमेशा नीचा दिखाने की कोशिश की। उनके अंधविश्वासों एवं अनाचारों के आगे उसे सदा झुकना ही पड़ा। वे यही चाहते थे कि वह एक लड़के को जन्म दें। इसीलिए उसे एक के बाद एक करके चार बच्चों को पैदा करना पड़ा ताकि एक लड़का पैदा हो। तले ऊपर के बच्चों के जन्म और घर व कॉलेज की ज़िम्मेदारियों ने उसके तन–मन को खोखला बना डाला था। पति और बच्चे उससे एक नौकरानी की तरह काम करवाते थे। ऊपर से पति के अभद्र व्यवहारों से उसे घिन भी आती थी। लेकिन पारिवारिक एकता को बनाये रखने के लिए सब कुछ सहना उसने अपना धर्म समझा। उसकी एक रिश्तेदार युवती एक बच्चे को जन्म देने बाद दूसरा बच्चा पैदा न करने का निश्चय लेती है। पति और ससुराल वालों को उसके इस फैसले से सहमत होना पड़ता है। यह देखकर उसे पछतावा हो रहा है कि उसने ऐसी हिम्मत क्यों नहीं दिखायी? पूरे बत्तीस साल उसने अपने आत्म–सम्मान की बलि चढ़ायी थी। लेकिन आगे ऐसा नहीं होगा। वह अपने पति के अत्याचारों के विरुद्ध आवाज़ उठाती है। वह उससे तलाक लेने की धमकी देती है। बरसों बाद वह अपनी अन्तर्निहित शक्ति को पहचान पायी थी। ऐसा करके शायद उसने आज अपने धर्म का पालन किया।

'तलहटी' सन्, 2002 में 'भारतीय ज्ञानपीठ' द्वारा प्रकाशित कहानी है। यह एक कलाकार के आत्म संघर्ष की कहानी है। ललित शंकर एक कलाकार है। लेकिन सम्पत्ति और सुख–सुविधाओं की लालच में पड़कर वह यह भूल जाता है कि एक कलाकार की असली पहचान तो उसकी कला है। धन या सम्पत्ति नहीं, बल्कि कला ही एक कलाकार की सामाजिक प्रतिष्ठा निर्धारित करती है। बच्चों के बहकावे में आकर ललित शंकर पुराना मकान बेचकर आधुनिक सुविधाओं वाला नया मकान खरीदता है। सुमना एक धनाढ्य, संभ्रान्त एवं कला–प्रेमी महिला है। वह ललित शंकर की कला का आदर करती है। वह उसे अपने घर में आमंत्रित करती है। उसके महलनुमा मकान की सुंदरता को देखकर ललित शंकर को आश्चर्य होता है। वह अपने घर को इस महल के सामने छोटा समझकर हीनता बोध से तड़पने लगता है। सुमना उसे समझाती है कि – ''आप कुछ मत सोचिए शंकर जी, कलाकारों की ज़िन्दगी से ज़्यादा मुझे उनकी कला में रुचि है।''[15] हीनताबोध एवं निरर्थक भावनाओं के दबाव में आकर ललितशंकर बीमार पड़ जाता है। सुमना के शब्दों का उस पर कोई असर नहीं पड़ा था। कलाकार हो या आम आदमी, उसे अपने मन को समदर्शी बनाने की आदत डालनी चाहिए। उसे खुद को संयमित रखकर सामान्य जीवन बिताना चाहिए – यही इस कहानी का संदेश है।

आपने 'धर्मरक्षा' कहानी में कन्या–जन्म की समस्या को उठाकर अंधविश्वास से पीड़ित नारी की दुर्दशा को प्रस्तुत किया है। 'धर्मरक्षा' कहानी के ससुराल वाले जड़–परम्पराओं पर अंधाधुंध विश्वास करते थे। घर में कन्या का पैदा होना उनकी नज़र में गुनाह था। परिवार में पुत्र का होना बेहद ज़रूरी था। इसलिए पुत्र–प्राप्ति के लिए वे उस पढ़ी–लिखी, सुसंस्कृत, कामकाजी बहू के हाथ–गले में ढेरों गंडे–ताबीज़ बाँध देते थे। ऐसे में दो बेटियों के बाद दो पुत्र और पैदा करना बहू के लिए लाजमी हो जाता है उसे अंधविश्वास का मूक शिकार होना पड़ा था।

'अगरबत्ती' कहानी की नौकरानी भूपी ईश्वर में अंधाधुंध विश्वास करती है। उसका विश्वास था कि नियम से अगरबत्ती जलाकर ईश्वर से प्रार्थना करने से उसकी सारी कठिनाइयाँ दूर हो जाएँगी। लेकिन इस अंधी आस्था से उसकी गरीबी दूर नहीं होती है। यहाँ लेखिका ने अंध श्रद्धा की समस्या को अंकित किया है।

'एक और एक' कहानी में भी लेखिका ने भारतीय समाज में व्याप्त अंधविश्वास का पर्दाफाश किया है। भरी जवानी में रमोला बहू विधवा हो जाती है। उसका पति केशव फौजी था और एक दुर्घटना तके मारा जाता है। लेकिन उसके ससुराल वालों का आरोप है कि ददिया सास ही केशव की मौत का ज़िम्मेदार है, क्योंकि रमोला विधवा ददिया सास की सेवा करती थी। इस कारण वह भी उनकी तरह छोटी–उम्र में ही वैधव्य–ग्रस्त जीवन बिताने के लिए अभिशप्त हुई है। रमोला की सास की बातें उनके मन के अंधकार को व्यक्त करता है कि – ''अरी इसे तो सत्तर बार समझाया, कि तू इधर न बैठा कर। पर इसे न जाने क्या हुआ था, दौड़ी छूटी ददिया के पास, दौड़ी भागी ददिया की गोद में–अब हो गयी न बुढ़िया की तरह की रांड़।''[16]

डॉ. शशिप्रभा शास्त्री ने कुछ कहानियों में भारतीय समाज में व्याप्त ढकोसलेबाज़ी एवं थोथे कर्मकाण्डों का उपहासात्मक अंकन किया है। 'फासले उजाले के' कहानी में लेखिका ने सुहास को नास्तिक विचारों वाली महिला के रूप में प्रस्तुत किया है। सुहास आस्था या विश्वास के बल पर नहीं, अपने तर्क बल पर जीती है। इसलिए वह ईश्वर के अस्तित्व पर भी व्यंग्य करती है।

निष्कर्षः

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि डॉ. शशिप्रभा शास्त्री के कथा साहित्य में चित्रित धार्मिक जीवन पर नजर डालने से प्रतीत होता है कि उनके धार्मिक विचार समयानुरूप है। आधुनिक जन जीवन के धार्मिक विचारों में बहुत कुछ परिवर्तन आया है। पुरानी मान्यताएँ तेजी से बदली जा रही है और नई मान्यताएँ उस स्थान की पूर्ति कर रही है। पाप–पुण्य संबंधी विचारों में भी परिवर्तन देखे जा रहे। परिस्थिति अनुरूप पाप–पुण्य की परिभाषा बदल रही है। आस्था और अनैतिकता प्रबल होती जा रही है। बदलते धार्मिक परिवेश में नारी के मानसिकता में भी बदलाव आ रहा है, जिसके कारण नारी का मन विद्रोह करने लगा है। वह चाहे धर्म को अपनाने के लिए तैयार है, जिसके फलस्वरूप आज की नारी सामाजिक खोखली मान्यताओं को ठुकराकर नवीन जीवन मूल्य के अन्वेषण में लगी हुई है। शिक्षित–नारी नौकरी करके आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हुई है। नारी जीवन की प्रगति में बाधक ऐसी रूढ़ियाँ और परंपराएँ अब टूटने लगी हैं।

संदर्भ –

[1] हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि का विकास, पृष्ठ 17
[2] प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि, पृष्ठ 10
[3] हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास, पृष्ठ 2
[4] हिन्दी उपन्यास : शिल्प और प्रयोग, पृष्ठ 244
[5] बृहद हिन्दी कोष (ज्ञानमण्डल लिमिटेड), पृष्ठ 1239
[6] हिन्दी उपन्यास कला, पृष्ठ 57
[7] डॉ. शिशिभूषण सिंहल – उपन्यास का स्वरूप, पृष्ठ 12
[8] डॉ. रामलखन शुक्ल – हिन्दी उपन्यास कला, पृष्ठ 23
[9] डॉ. शशिप्रभा शास्त्री–सीढ़ियाँ, पृष्ठ 114

[10] डॉ. शशिप्रभा शास्त्री–परछाइयों के पीछे, पृष्ठ 78
[11] डॉ. शशिप्रभा शास्त्री–नावें, पृष्ठ 105
[12] डॉ. शशिप्रभा शास्त्री–सीढ़ियाँ, पृष्ठ 194
[13] डॉ. शशिप्रभा शास्त्री–परछाइयों के पीछे, पृष्ठ 30
[14] डॉ. शशिप्रभा शास्त्री–चर्चित कहानियाँ, पृष्ठ 5
[15] डॉ. शशिप्रभा शास्त्री–तलहटी, पृष्ठ 20
[16] डॉ. शशिप्रभा शास्त्री–एक टुकड़ा शांतिरथ, पृष्ठ 146–147